P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-4*(Part-2) December- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

रामानन्दाचार्य का तत्त्वदर्शन और उपासना विधि : एक पर्यालोचन

आशुतोष पारीक
सहायक आचार्य,
संस्कृत विभाग,
सम्राट् पृथ्वीराज चौहान
राजकीय महाविद्यालय,
अजमेर, राजस्थान, भारत

कान्ता फुलवारिया
शोधार्थी,
संस्कृत विभाग,
सम्राट् पृथ्वीराज चौहान
राजकीय महाविद्यालय,
अजमेर, राजस्थान, भारत

सारांश

इस शोध पत्र में रामानन्दाचार्य द्वारा लिखित ग्रन्थों के मुख्य तत्त्वों का उल्लेख हुआ है तथा इसमें मुख्य रूप से वैष्णव–मताब्ज भास्कर ग्रन्थ में प्रतिपादित तत्त्वों विवेचन हुआ है।और वैष्णव मताब्ज भास्कर ग्रन्थ मे वैष्णव धर्म की रीति, नियम, परम्परा उपासना धर्म आदि का विवेचन हुआ। तथा मोक्ष के स्वरूप का भी आध्यात्मिक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य शब्द : जीव–जगत्, ब्रह्म, उपासना, चित्त्–अचित्, अष्टांग, योग, विशिष्टाद्वैत, मोक्ष कर्तृभाव, भोक्तृभाव।

प्रस्तावना

भारत देश में भक्ति का समारम्भ कब हुआ तथा इसका बीजारोपण कहाँ से हुआ। इस संबंध में विद्वानों में अभी मतभेद है। एक श्लोक श्रीमद्भागवत के माहात्मय मे मिलता है। जहाँ भक्ति स्वयं नारदजी से कहती है–

उत्पन्नद्रविडे चाहं कर्णाटे वृद्धिमागता।
स्थिता किंञ्चिमहाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता।[1]

अर्थात् मैं द्रविड देश में जन्मी, कर्नाटक में विकसित हुई कुछ समय महाराष्ट्र में रही और गुजरात पहुँच कर मैं जीर्ण हो गई।

रामानुज और उनके अनुयायियों द्वारा वैचारिक तथा सामाजिक उदारता के बावजूद मुसलमानों में हिन्दु धर्म के प्रति द्रोह की भावना में कमी नहीं आयी। उनके द्वारा स्थान–स्थान पर उत्पात मचाया जाने लगा। ध्वंस लीला, अत्याचारों में निरन्तर वृद्धि होने लगी। शायद इसी धर्मद्रोह के विनाशकारी समय में एक नयी आध्यात्मिक ज्योति का आविर्भाव हुआ। जिनका नाम था –स्वामी रामानन्द।

स्वामी रामानन्द ने तत्कालीन देशव्यापी सामाजिक परिस्थिति की निकटता और देश की निरन्तर बिगड़ती हुई दशा को देखकर रामानुज द्वारा प्रवर्तित विशिष्टाद्वैत को उदार और सर्वसहज बनाया। आचार्य रामानन्द ने सर्वधर्म समन्वय का अपना अभियान चलाया और उसके अन्तर्गत सभी जातियों धर्मो और मतों के लोगों को सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया। भारत में शूद्रों को धार्मिक समानता दिलवाने का क्रान्तिकारी कार्य सर्वप्रथम आचार्य रामानन्द के प्रभाव से ही संभव हो सका। स्वामी रामानन्द का जन्म प्रयाग में माघ कृष्ण सप्तमी को पिता पुण्यसदन शर्मा और माता सुशीला के घर में हुआ। उनके प्रमुख ग्रन्थों में 1. वैष्णवमताब्जभास्कर, 2. श्री रामार्चन पद्धतिएवं अन्य प्रचलित ग्रन्थों में 1. आनन्द भाष्य, 2. सिद्धान्तपटल, 3. रामरक्षा स्तोत्र एवं 4. योगचिन्तामणि थे।

शोधालेख के उद्देश्य

1. रामानन्द दर्शन का ज्ञान हो सकेगा।
2. रामानन्द दर्शन के मुख्य तत्वों का तात्विक ज्ञान संभव हो सकेगा।
3. रामानन्द की राम–भक्ति से परिचय हो सकेगा।
4. रामानन्द की आडम्बर रहित भक्ति परम्परा और भक्ति दर्शन का विशिष्ट ज्ञान संभव हो सकेगा।
5. रामानन्द के वैष्णवों की भक्ति, परम्परा, रीति–रिवाज, पूजन–पाठ विधि अथवा निश्छल भक्ति की प्रेरणा मिल सकेगी।
6. रामानन्द के कृतित्त्व और साहित्य का संक्षिप्त परिचय हो सकेगा।

स्वामी रामानन्द : तत्त्व दर्शन और उपासना विधि

भारतीय समाज संस्कृति और धर्मो की नींव आध्यात्मिकता के सुदृढ़ धरातल पर अवलंबित है। सनातन काल से अनके युगद्रष्टा मनीषियों ने आध्यात्मिकता की इस ज्योति को समय–समय पर प्रज्वलित किया है। कहना न होगा कि सहस्रों वर्ष पूर्व से भारतीय जनमानस अध्यात्म की इस अम्लान आभा

से भासमान होता रहा है। उसका प्रातिभासिक रूप आचार्यों, महात्माओं, संत–साधकों और तपस्वियों द्वारा प्रकट होता रहा है। आचार्य रामानन्द इसी समुज्ज्वल परम्परा के एक देदीप्यमान नक्षत्र के रूप में गत सात सौ वर्षों से भारतीय नभमण्डल को आलोकित करते रहे हैं।

पश्चिमी जगत् में फिलॉसफी शब्द अकादमिक संसार तक ही अपना कार्यक्षेत्र विस्तृत कर सका है। उसके वर्ग की सीमाएँ दृश्यमान जगत् के चौखटे तक ही सीमित है– भले ही उसकी बौद्धिक ऊँचाई ज्ञान की पराकाष्ठा को स्पर्श करती हो पर अपरोक्षानुभूति की सापेक्षता उस शब्द में, कहीं भी ध्वनित नहीं होती है, जबकि भारतीय चिंतन परम्परा में ''दर्शन'' शब्द परमसत्ता के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अपरोक्षानुभूति से तादात्म्य करता दिखाई पड़ता है। इसे भी भारतीय चिन्तकों ने साक्षात् अपरोक्षानुभूति से तादात्म्य कहा जाता है। यही अनुभूति ब्रह्मतत्त्व पर निर्वहन करती है, जिसे दर्शन कहा जाता है। पश्चिम की अनुभूति में फिलॉसफी और थीमालॉजी अलग–अलग है, जबकि पौर्वात्य परम्परा में दोनों शब्दार्थ की तरह अभिन्न हैं। दर्शन का मुख्यार्थ परमतत्त्व का सायुज्य है यही हमारा प्राप्तव्य भी है। इसके निमित्त व्यवहृत विचार की दार्शनिक चिंतन कहे गये हैं।

स्वामी रामानन्द ने सम्पूर्ण भारत में वैष्णवी रामभक्ति का प्रसार करने में अथक प्रयास किया। भारतीय जनमानस में वर्षों से व्याप्त भक्ति की महिमा उन्हीं द्वारा सर्जित है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि वैष्णव भक्ति को लोकप्रिय बनाने में स्वामीजी का अप्रतिम योगदान है। विमर्शों और विवेचनों के प्रारम्भिक वर्षों में रामानन्द सम्प्रदाय का संबंध रामानुज सम्प्रदाय से अभिन्न माना जाता रहा है। पर जैसे–जैसे विद्वानों ने समीक्षा पंथ का विश्लेषण प्रारंभ किया, उसके स्वतंत्र रूप का रहस्योद्घाटन होता गया। सिद्धांत, दर्शन, पूजा–पद्धति, आचार–विचार, आराध्य भक्तानुगतों तथा ग्रन्थों ने रामानन्द सम्प्रदाय को एक स्वतंत्र संसार की तरह स्थापित कर दिया। पारम्परिक रूप से स्वामी रामानन्द के दार्शनिक चिन्तन का सूत्र विरचित ग्रन्थों में मुख्यतः ''वैष्णवमताब्जभास्कर'' एवं ''रामार्चन पद्धति'' ने इसे स्वतंत्र सम्प्रदाय की गरिमा प्रदान की। स्वामी रामानन्द के दार्शनिक चिन्तनों और सिद्धान्तों के मूल स्रोत यही दोनों ग्रन्थ माने जाते हैं। वैष्णव सिद्धान्त और आचार से संबंधित दस प्रश्न उसके ही प्रधान शिष्य सुरसुरानन्द पंचगंगाघाट, काशी में समुत्सुक भाव से स्वामीजी के समक्ष रखते हैं–(1) तत्त्व क्या है? (2) जाप्य मंत्र क्या है? (3) द्रष्ट का ध्यान और उनका स्वरूप क्या है? (4) मुक्ति का साधन क्या है? (5) श्रेष्ठ धर्म कौनसा है? (6) वैष्णवों के धर्म क्या हैं? (7) उनके कितने भेद हैं? (8) वैष्णवों का निवास कहाँ है? (9) वैष्णवों का कालक्षेप कैसे हो? (10) उनका प्राप्तव्य क्या है? वैष्णवमताब्जभास्कर में ये प्रश्नोत्सुक पक्तियाँ इस प्रकार हैं–

तत्त्वं किं किं च जाप्यं परमिह विबुधैर्वैष्णवै र्ध्यान मिष्टम्।
मुक्तेः किं साधनं सतसुमतिमतिमत्तो धर्म एकोअस्तिकश्च।।
धर्माणां वैष्णवास्ते गुरूवर कतिधा लक्षणं किं च तेषाम्।
कालक्षेपः किमाप्यं कथमुरू शुभदं कुत्र कार्य्यो निवास।।[2]

ब्रह्म

तत्त्वों को तीन माना गया है। चित् (जीव) अचित् (त्रिगुण प्रकृति) तथा विशिष्ट ईश्वर। इससे स्पष्ट होता है कि स्वामी रामानन्द परमतत्त्व को चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्ममय करते हैं। उनके मतानुसार स्वयं विष्णु ही राम के रूप में अवतीर्ण हुए थे। ये राजा दशरथ के पुत्र हैं ,जानकी पत्नी हैं, पिता की आज्ञा स्वीकार कर चौदह वर्ष तक जिन्होंने वन में चित्रकूट को अपना निवास स्थान बनवाया था वह भक्तवत्सल है तथा इस संसार के कारणभूत हैं। ऐसे राम जो लक्ष्मण –सीता सहित विराजमान हैं– उनकी उपासना करनी चाहिए।

द्विभुज राम निश्चय ही ब्रह्मस्वरूप हैं। इसी ग्रंन्थ में ईश्वर के पाँच रूपों का वर्णन मिलता हैं जिन्हें– पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी एवं अर्चा कहा गया है। राम इन्हीं पंचरूपों से सीता से अवियुक्त रहता है। सीता प्रकृतिस्थानीय, लक्ष्मण जीवस्थानीय और श्री राम ईश्वरतत्त्व के घोतक हैं।

मनोमिलिन्दस्तव पादपंकजे, रमार्चिते संरमतां भवे–भवे।
यशः श्रुतौ ते मम कर्णयुग्मकं त्वद् भक्त सगों अस्तु सदा मम प्रभो।।[3]

श्रीसीता (मूल प्रकृति)

यह मायास्वरूप त्रिगुणात्मिका प्रकृति है। अचेतन अज्ञ, नित्य, अविकृत, विश्वयोनि आदि चौदह गुणों से समन्वित है। स्वामीजी ने इन्हें राम की आशादिनी शक्ति तथा बृहमथानी कहा है। इनका निवास राम में है, किंतु सृष्टि सर्जन में वह उनसे पृथक् हो जाती है। इन्हें ही माया या मूल प्रकृति भी कहा जाता है। यही विद्या और अविद्या माया के रूप में विभक्त होती है। इस सम्प्रदाय में सीता रामप्रिया के रूप में मान्य है। बिना उनकी कृपा के राम मुमुक्ष जनों का उद्धार नही करते हैं। वह सर्वगुणों की केन्द्रीभूत शक्ति है। वैष्णवमताब्जभास्कर का एक श्लोक देखिए–

ऐश्वर्य यदपांगसंश्रयमिदं भोग्यं दिग्गीशैर्जग।
च्चित्रं चारियलमद्भुतं शुभगुणा वात्सलयसीमा च या।
विद्युतपुंजसमानकांतिरामपक्षातिः सुपद्पेक्षणा।
दत्तान्नोदखिलसंपदो जनकजां रामप्रिया सानिशम्।[4]

इस प्रकार चित् और अचित् के साथ सीतारूप श्रीदेवी श्रीराम परब्रह्म से सम्बद्ध है– 'रमायेति चतुर्थ्येन श्रिया देव्यास्तु सर्वदा'। चेतन अचेतन का ब्रह्म है, स्वगतभेद है परन्तु श्री अर्थात्–सीता के साथ भेदाभेद है।

जीव

स्वामी रामानन्द ने जीव का एकरूप में स्थित बताया है। वह ईश्वर की अपेक्षा अज्ञ है, चेतन और अज्ञ है। उसकी पराधीनता भगवदाधीनमें बताई गई है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। बद्ध आदि भेदों से इतर है। भगवन्मय शरीर का निवासी है। अपने कर्म के अनुसार फलाधिकारी है। उसके रक्षाकवच भगवान् है जो सदैव उसकी चिंता करते हैं। जीव अपने कर्तृभाव और भोक्तृभाव के अभिमान से ग्रसित रहता है। तत्त्वज्ञों द्वारा जीव जानने योग्य है। वह ज्ञान स्वरूप तो है ही, ज्ञान का आश्रय भी है। वह परमात्मा का अत्यन्त प्रिय, नित्यता से परिपूर्ण और स्वप्रकाश से प्रकाशित है। जीव शेष–शेषी अथवा अशांति भाव में स्थित है। स्वामीजी ने उनकी कई कोटियाँ और

अवस्थाएँ बताई हैं। मुख्यतः उसे बद्धजीव तथा मुक्तिजीव की कोटियों में बाँटा गया है। जीव के अनेक भेदाभेद हैं। वैष्णवमताब्जभास्कर का उद्धरण प्रस्तुत है–

नित्यो, ज्ञाज्ञतनोऽजः सततपरवशः सूक्ष्मतोअत्यन्तसूक्ष्मो–
भिन्नो बद्धादिभेदैः प्रतिकुणपमसौ नैकधा सूरिवर्यो।
श्रीशाक्रांतालयस्थो निजकृतिफलभुक्तत्सहायोद अभियानी।
जीवः संप्रोच्यते श्रीहरिपदसुमते तत्त्वजिज्ञासुवेद्यः ।।(5)

मुक्ति (मोक्ष)

जीवात्मा द्वारा अन्तिम प्राप्ति मोक्ष अथवा मुक्ति से होती है। सम्पूर्ण साधना इसी के निमित्त की जाती है। रामानन्द सम्प्रदाय में श्रीराम के अनुग्रह से ही जीव के सांसारिक बंधन कटते है। भवबंधनों से मुक्ति के उपरान्त ही जीव साकेत लोकगमन करता है। रामानन्द सम्प्रदाय में भगवान् के दिव्यलोक को ही साकेत लोक कहा जाता है। यहाँ उसे सायुज्य की प्राप्ति होती है– जिसे मोक्ष कहा जाता है। सुषुम्ना, अर्चिमार्ग, उत्तरायण, संवत्सर, सूर्य, चन्द्र, और विद्युत् आदि मार्गों में होता हुआ जीव दिव्य साकेत लोक पहुँचकर विश्रांति का अलौकिक आनन्द प्राप्त करता है सायुज्य की प्राप्ति उसे मुक्ति प्रदान करती है। यही जीव की मुक्तावस्था है।

स्वामी रामानन्द ने जीव को परम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कई एक मंत्रों का विधान किया है। मंत्र राज श्री तारकमंत्र की संस्थापना स्वामी रामानन्द इस रूप में करते हैं–

1. रां रामाय नमः। (तारकारण्य)(6)
2. श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये।(7)
   श्रीमते रामचन्द्राय नमः। (द्वयमंत्र)
   इसके साथ अन्त में (चरममंत्र) सकृदेव प्रपत्राय तवास्मीति च याचते।
   अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।

यद्यपि इन सभी विमर्शों और व्याख्याताओं में रामानन्दजी ने कहीं भी विशिष्टाद्वैत अभिधान से इस दर्शन को संबोधित नहीं किया है, पर इसका निहितार्थ स्पष्टतः विशिष्टाद्वैत ही है। इन मंत्रों मे श्री पुरूषार्थस्वरूप राम से अभिन्न सीता का संबोधन भी होता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि केवल परमात्मा ही सत्य नहीं है– ब्रह्म ही एक मात्र सत्ता नहीं है, अपितु तीन नित्य सत्ताएँ विराजमान हैं– जीवात्मा (चित्) जडजगत् (अचित्) और परमात्मा (ईश्वर) चित्–अचित्–विशिष्ट।

उपासना विधि

स्वामी रामानन्द ने रामार्चनपद्धति में वैष्णवों की उपासना विधि को विधिवत् व्याख्यायित किया है। एक वीतरागी को भुजमूल में धनुष –बाण, ललाट पर ऊर्ध्वपुण्ड्र, नामस्करण मंत्र तथा तुलसी की माला धारण करना अपेक्षित है। रामानन्द सम्प्रदाय में इन्हें पंचसंस्कार कहा जाता है। इस प्रकार पंच संस्कारों से विवेक आदि सात साधनों तथा यमादि अष्टांगयोग से समन्वित होती है। इस पराभक्ति का साधन है–

उदारकीर्तेः श्रवणं च कीर्तन
हरेर्मुदा संस्मरणं पदश्रितिः
समर्चन वन्दनदास्य सख्यानि
आत्मार्पणं सानवधेंति गीयते।।(8)

जीव की मुक्ति की परमसाधना भक्ति व प्रणति ही है। भक्ति को साधने के उपाय महाव्रत है। ये मूलतः बाह्यरूप में दृश्यमान् हैं। श्रवणादि आठों उपायों के अनुष्ठान से जीव प्रपति का अधिकार बनता है। स्वयं को परमात्मा के अधीन कर देना ही प्रपति है। भगवान् की सहेतुक–निर्हेतुक दोनों कृपा दृष्टियों से मुक्ति कल्मषों का मार्जन स्वयं भगवान् श्रीराम करते हैं।

स्वामी रामानन्द का काल संघर्षमय था। दो संस्कृतियाँ और सभ्यताएँ परस्पर टकरा रही थीं। एक को सत्ता का बल मिला था तो दूसरी को साधुता का। जब सामने का विरोध प्रबल हो तो मात्र सैद्धांतिक चिंतन कारगर नहीं हो पाते हैं। जीवन की समस्या का हल नहीं निकाल सकते। उसके लिए तो जीवन और जगत् की महत्ता को स्वीकारना ही पड़ेगा। स्वामी रामानन्द ने इसीलिए विष्णु और लक्ष्मी की जगह धनुर्धर राम और जगद्धात्री सीता को आराध्य बनाया। हनुमान् के प्रति भजन बनाकर उनके शौर्य का देशवासियों को स्मरण कराया–मैं ब्रह्म हूँ, जगत् मिथ्या है, ब्रह्म से परे कुछ नहीं है(9), जैसे जीवन से दूर होते सिद्धांतों को नकारा और ब्रह्म के साथ जीव और जगत् की सत्यता सिद्ध की। उनकी इस प्रगतिशील चेतना में स्वाधीनता के स्वर मुखरित होते सुने जा सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी रामानन्द ने मात्र दार्शनिक सिद्धान्तों की स्थापना कर सम्प्रदाय का सर्जन ही नहीं किया, अपितु वैष्णवभक्ति की लोकप्रियता में अभूतपूर्व योगदान भी दिया। उदारता का परिचय देते हुए मनुष्य मात्र के लिए भक्ति का द्वार उन्मुक्त कर दिया। भक्ति द्वारा सामाजिक शक्ति का संघटन होता है। जैसे नवीन मंत्र उन्हीं द्वारा प्रदत्त हैं। उन्होंने भक्ति के माध्यम से तत्कालीन साम्प्रदायिक जड़ताओं को तोड़ा। फलतः निम्नवर्गीय जातियों ने उनके द्वारा प्रवर्तित राम को अपना आराध्य बनाया। मौलाना रशीउद्दीन ने 'तजकीर तुलफुकरा' में रामानन्द की उदारता को बेमिसाल बताया है। स्वामीजी ने तीर्थाटन और देशाटन के माध्यम से सम्पूर्ण भारतीय समाज को जोड़ने की अद्भुत कला परवर्ती सम्प्रदायों को सिखायी। धनुर्धारी राम उनके आराध्य बने और भक्तानुगत उनके (सैनिक) वैरागी। उन्होंने जीवन और विचारों की लंबी यात्रा में विषमता को भंजित किया। रामेश्वरम्, मदुरै, त्रिचिरापल्ली, बदरिकाश्रम, द्वारका तथा गुजरात के अन्य तीर्थों की धर्मयात्राएँ सम्पन्न कीं। मिथिला, चित्रकूट, जनकपुर, जगन्नाथपुरी,वृंदावन, हरिद्वार, नैमिषारण्य, अयोध्या, प्रयाग, काशी तथा कश्मीर तक उन्होंने यही उपदेश दिया कि जगत् सत्य है, जीव सत्य है और परमात्मा तो विशिष्टता के साथ अनादि सत्य है ही।

भक्ति सम्प्रदाय की प्रायः तीन संज्ञाएँ प्रचलित हैं– भगवान, पांचरात्र और एकायन । इसे सातत्य भी कहते हैं। भारतीय धर्म, दर्शन और साहित्य के विकास में वैष्णव भक्ति प्रस्थान (आंदोलन) का अप्रतिम योगदान है। यहाँ के मनीषियों ने मानव जीवन को पुरुषार्थचतुष्टय का पर्याय माना है। अतः धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, मानव के लौकिक–पारलौकिक कल्याण के बोधक हैं। पारलौकिक कल्याण की पूर्ति के लिए भारतीय शास्त्रों ने

आगम–निगम, पुराण–दर्शन, ज्ञान–कर्म–उपासना जिसे भक्ति भी कहा जाता है। मार्गत्रय का विधान किया है। यज्ञ–याग कर्म की स्थापना की है जो मुख्यतः ब्राह्मण ग्रन्थों से अनुशासित होते हैं। आरण्यक उपनिषद् में ज्ञानमार्ग की स्थापना है। महर्षि याज्ञवल्क्य के औपनिषद् मीमांसा में आत्मदर्शन पर विशेष बल दिया गया है–'आत्मावा अरे द्रष्टव्यः'[10]। इस मत के अंग के रूप में जीव, जगत् और ब्रह्म की विशेष चर्चा हुई है। इसी चिन्तन के आलोक का परवर्ती विकास और विस्तार सांख्ययोग, न्याय, वैशेषिक और वेदांत के तत्त्वज्ञान रूप में कपिल, पतंजलि, गौतम, कणाद और बादरायण के विमर्शों में परिलक्षित होता है। उपनिषदों में जगत् के कारणभूत पंचमहाभूतों का प्रसंगअन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय पंचकोशोंके रूप में आता है। इतना ही नहीं व्यष्टिरूप आत्मा के साथ चेतन रूप परमात्मा ब्रह्म की परिकल्पना भी की गई है। यही ब्रह्म उपनिषदों में समस्त जगत् प्रपंच, जड़, चेतन का उपादानकारण भी है।

मनुष्य के ऐहिक और आमुष्मिक श्रेय के लिए निर्दिष्ट भक्तिमार्ग का प्रादुर्भाव आज भी मत–मतांतरों की कुहेलिका में धुंधला सा दखाई पड़ता है। भक्ति को कुछ वेदविहित कुछ वेद–अविहित तो ग्रियर्सन जैसे विदेशी विद्वानों ने ईसाइयों का प्रदेय सिद्ध करने में भी संकोच नहीं किया है। इन निरर्थक वादों–संवादों में न पड़कर भक्ति को भारतीय भूमि से उपजा चिन्तन मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। अद्वैतवादी आचार्य शंकर भक्ति को वैदिक सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं मानते। 'ब्रह्मसूत्र' में उन्होंने इसकी विस्तृत चर्चा की है। उनके अनुसार जीव नित्य होने के कारण न उत्पन्न होता है न नष्ट। इसी तरह अन्य विद्वान् इसे निगमपरक न मानकर आगमपरक ही स्वीकार करते हैं। जबकि 'ब्रह्मसूत्र' पर भाष्य लिखते समय आचार्य रामानुज, बल्लभ ने भक्ति को श्रुत्यनुमोदित ही स्थापित किया है। प्रमाणस्वरूप वेद, उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रंथों का द्रष्टान्त रखा है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय चिन्तनधारा निरन्तर नव विचारों को महत्त्व देती रही है। फलतः किंचित् अवैदिक होते हुए भी कालांतर में इसे वैदिक बनाने का भेद प्रायः अप्रासंगिक सा लगता है। आज भक्तिप्रपत्ति या उपासना का उद्देश्य मानवमात्र का कल्याण और पारमार्थिक सत्ता का चिन्तन हो गया है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय और मुंशीराम शर्मा ने भक्ति को वैदिक संहिताओं तक अन्वेषित किया है। वहाँ वासुदेव और विष्णु प्रायः एक ही रूप में भजे गये हैं। वासुदेव और नारायण की भक्ति का विधान पाणिनि से भी पूर्व का है। पाणिनि के व्याकरणशास्त्र में वासुदेव की पूजा करने वाला वासुदेव संज्ञा प्राप्त करता है। भागवत धर्म की उपासना पद्धति सर्वप्रथम महाभारत में मिलती है। सब मिलाकर यही कहा जा सकता हैकि उत्तरी भारत में भक्ति का जो स्वरूप मिलता है वह ईसा की दूसरी–तीसरी शताब्दी में दक्षिण के तमिल प्रांत में दिखाई पड़ने लगा था। उसका उत्कृष्ट रूप छठीं से नवीं शती तक उन भक्तों में मिलता है, जिन्हें आलवार और नायनार कहते हैं। इन द्वाद्वश आलवारों में नम्मालवार, शठकोपाचार्य तथा आडाल प्रसिद्ध हैं। नवीं शती के अंत में दक्षिणी प्रांत में जन्म लेने वाले नाथमुनि ने इनके प्रबंध काव्यों का संकलन किया। ये उत्तरी भारत में प्रचलित पांचरात्र सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे। इन्हीं के पौत्र आलवंदार यमुनाचार्य ने भक्ति को वेदों से जोड़ दिया। इनका दार्शनिक सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत था। इसे ही दक्षिण के आचार्यों ने पल्लवित कर भक्ति की मंदाकिनी प्रवाहित कर दी। यह अधोलिखित विशिष्ट तत्त्वों से निर्मित थी– 1. ज्ञानकर्म की अपेक्षा भक्ति का महत्त्व, 2. नाम महिमा, 3. स्तुति या कीर्तन, 4 प्रपत्ति या शरणागति, 5 महिमा, 6 सत्संग और वैराग्य।

रामानुजाचार्य, निम्बाकाचार्य, मध्वाचार्य और वल्लभाचार्य के सिद्धान्त विस्तार में न जाकर उनमें प्रचलित भक्ति की लोकस्पर्शिता और जनोन्मुखी प्रवृत्ति को समझने का उपक्रम ही इन पंक्तियों में किया गया है। भक्ति में वस्तुतः आत्मा–परमात्मा के एकत्व की प्रतीति होती है। फलतः अनेक दार्शनिक मतों के माध्यम से मनुष्य और परमेश्वर के अनादि सम्बन्ध को भक्ति में विस्तार दिया गया है। महाभागवत का कथन है कि हरि का प्रिय बनने में वर्ण, कर्म, जन्म–जाति किसी का बन्धन स्वीकार्य नहीं है। भक्ति और ईश्वर के प्रति अनुराग लौकिक निषधों के पार की वस्तु है। भागवत में कहा गया है–

न यस्य जन्मकर्माभ्यां न वर्णाश्रमजातिभि :।
संजाते अस्मित्रहंभ्झावा देहे वै सः हरे प्रियः।।[11]

हरिप्रिय होना अर्थात् भगवद्भक्ति प्राप्त करना सबका जन्मजात अधिकार है। ध्यातव्य है कि भक्ति के आचार्यों ने दार्शनिक अवधारणाओं पर विचार करते हुए, जीव परमेश्वर और संसार इन तीन इकाइयों को स्वीकार किया है। अतः प्रत्येक जीव भक्ति का अधिकारी है। इस प्रकार की अन्यान्य घोषणाएँ शास्त्रों में पदे–पदे मिलती हैं। भक्ति के आचार्य नारद ने तो भक्ति में प्रेम तत्त्व को ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्वीकार किया है। उनकी मान्यता है कि ईश्वर के चरणों में उत्कट अनुराग भक्ति का प्रथम अनुबंध है। भगवत्प्रेम के इस कार्य व्यापार में सवर्ण, शूद्र अथवा नारी–पुरुष के आधार पर कोई निर्णय नहीं होता है। आचार्य नारद के नाम से भक्ति–शास्त्र में प्रेम, सख्य, वात्सल्य, दास्य तथा परमविरहादि एकादश आसक्तियाँ प्रचलित हैं। मुनि नारद कहते हैं – 'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृतस्वरूपा च।' ईश्वर के चरणों में निरभिमानी बनकर शरणागत होना भक्ति का लक्षण है। आचार्य नारद भक्ति के स्वरूप पर विचार करते हुए कहते हैं कि अहंकार, द्वैतभाव, रूप–कुल की श्रेष्ठता का भाव, विद्या और धन सबका प्रभु में विलय ही प्रपत्ति है।

आचार्य रामानुज, निम्बार्क, मध्व तथा वल्लभ की भक्ति का केन्द्रीय भाव ही ईश्वर और जीव का एकात्म होना है। 'राधामाधव माधवराधा कीट भृग गति है जू गयी' इस सिद्धान्त के आलोक में जब हम बल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग का निरूपण करते हैं तब वर्ण, जाति, ऊँच –नीच, स्पृश्य, अस्पृश्य किसी भी सांसारिक उपाधि की उपस्थिति वहाँ वर्जित होती है। अतः कतिपय विद्वानों की यह धारणा है कि भक्ति शास्त्रानुमोदित होकर मात्र सिद्धान्तों के तर्कजाल में भी उलझी रहती है अथवा वर्ग विशेष की चेटी बनी रहती है–सत्य से परे है। आलवार और नायनार विष्णु और शिव की आराधना में इस सीमा

तक तल्लीन होते थे कि अपनी 'सुध–बुध' खो बैठते थे। स्वयं पुरुष हैं अथवा स्त्री भी हैं तो अपनी लौकिक मर्यादाएँ भूलकर भक्तिमय हो जाती थीं। कालांतर में उनकी प्रेममयी साधना को रामानुज इत्यादि आचार्यों ने सूत्रबद्ध किया। वही भक्तिशास्त्र का सिद्धान्त कहा गया है। अतः शास्त्र और लोक का पार्थक्य कर भक्ति सिद्धान्तों की मीमांसा संभव नहीं है। भक्ति मोक्ष प्राप्ति का सरलतम मार्ग है। न इसमें सवर्ण होने की आवश्यकता है न शास्त्रज्ञ बनने की। यहाँ तो प्रेम ही पर्याप्त है। अतः लोक पक्ष में भक्तिमार्ग का जितना सामीप्य है, उतना किसी साधनपद्धति का नहीं। भक्तिमार्ग की लोकप्रियता का कारण भी यही है।

भक्ति की यह स्रोतस्विनी चौदहवीं–पंद्रहवीं शती तक अपने प्रवाह का विशाल और विस्तृत पाट तैयार कर चुकी थी। आचार्य रामानन्द यद्यपि रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत सिद्धांत से पूर्णतः सहमत थे फिर भी युगीन संदर्भों की आवश्यकता को समझते हुए उन्होंने 'रामानन्द सम्प्रदाय' का प्रवर्तन किया। भारतीय जनजीवन में चौदहवीं– पंद्रहवीं शती तक इस्लामी शासन का प्रत्यक्ष प्रभाव बढ गया था। अतः सैद्धांतिक मतवादों और धार्मिक सम्प्रदायों पर कई प्रकार के संकट थे। फलतः सनातनी हिन्दू परम्परा रक्षात्मक होने के कारण कहीं न कहीं संकीर्ण भी हो चली थी। भारतीय हिन्दू परकीय धर्मावलंबियों से अपने उपास्य, संस्कृति और सभ्यता को किसी भी मूल्य पर सुरक्षित रखना चाहते थे। फलतः उपास्य और आराध्य के प्रति परिस्थितिजन्य गोपन का भाव बढ़ने लगा। सर्वसुलभता कम हो गयी। कतिपय विकृतियों ने परस्पर द्वन्द्व का सर्जन किया और धीरे–धीरे अनपढ़, निम्नवर्णी आलवारों–नायनारों द्वारा संचरित भक्तिमार्ग जो दसवीं से तेरहवीं शती तक शास्त्र का रूप पकड़ चुका था। अब उन्हीं वर्णो के लिए असहज हो गया। इस प्रकार धर्मगत अनेक समस्याएँ और कालविशेष की रूढियाँ समाज में विकृत रूप ग्रहण कर चुकी थीं। परिणामतः भक्तिभावित मार्ग में सामान्य जन कुछ कटता और कम सटता सा प्रतीत हो रहा था। कतिपय बाह्य विभाजक रेखाएँ भी सुगण–निर्गुण के नाम से अपने–अपने रंग चटक कर रहीं थी। उस समय सर्वाधिक प्रमुख रंग छूआछूत का दिखाई पड़ता था। स्वामी रामानन्द की दृष्टि इस बदरंग को तीव्रता से क्षरित करना चाहती थी, अतः उन्होंने विष्णु के अवतारों में सर्वाधिक लोकप्रिय और ग्राह्य रामावतार को अपना आराध्य घोषित किया और सगुण–निर्गुण दोनों भक्ति पद्धतियों में रामावतार में निहित रामतत्त्व की अनिवार्यता स्थापित कर दी। 'दसरथ सुत तिहुं लोक बखाना राम नाम को मरम है आना'[12] की उक्ति कबीर बड़ी प्रगल्भता से करते तो है, पर क्या राम के बिना उनकी भक्तिसाधना सिद्धावस्था को प्राप्त हो सकती है। सगुण या निर्गुण राम जो भी हों उसे कबीर ने स्वामी रामानन्द से ही ग्रहण किया है।

स्वामी रामानन्द का चिन्तन दिशाबोधक और कालातीत है। उन्होंने रैदास (चमार) को अपने शिष्य बनाया। सेन को दीक्षा दी। धन्ना जाट को राम का मंत्र दिया। कबीर जुलाहे थे। अन्य संत भक्त निम्न जातियों से आये थें, पर स्वामीजी के चिन्तन में जीव, जगत् और ब्रह्म की नित्यता में सांसारिक मान्यताएँ नगण्य थीं। यही कारण था कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, निम्न कुलोत्पन्न संत तथा जुलाहे तक को दीक्षित करने में उनकी लोकोन्मुखी दृष्टि सर्वत्र उदार दिखती है। उनकी द्वादश शिष्य परम्परा में सगुण का प्रभाव भी कम तेजस्वी नहीं था, पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि उनके प्रत्यक्ष शिष्यों अनंतानंद के शिष्य नरहर्यानन्द थे। इन्हीं नरहर्यानन्द के शिष्य गोस्वामी तुलसीदास ने सगुण भक्ति मार्ग का कैनवास इतना बड़ा बना दिया कि शेष साधनाएँ बौनी जैसी लगने लगी। पर इसका तात्पर्य यह कदापि न लगाना होगा कि दोनों पद्धतियों में कहीं भी लोकोन्मुखता की न्यूनता दिखाई पड़ी हो। आज कबीर के नाम पर कबीरचौरा, सैन (नाई) पर सेनपुरा, नरहर्यानन्द के नाम पर वैष्णव भक्ति की लोकसम्पृक्तता और लोकस्वीकृति पर अपनी गहरी छाप लगाते हैं। उन द्वादश शिष्यों की परम्परा में सुरसरि और पद्मावती जैसी नारियों का सम्मिलित होना सर्वस्पर्शी भक्ति का एक और बड़ा प्रमाण है।

आचार्य रामानन्द भक्ति के संदर्भ में बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कहते हैं–''सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणो मताः''[13]अर्थात् भक्ति सर्वजन के लिए है। सर्वजन का वह मौलिक अधिकार है । उसमें भेद या खण्ड दृष्टि का महत्त्व नहीं है। उसकी भित्ति समता, ममता और समरसता पर टिकी है। मायोपाधिक बंधन भक्ति के संदर्भ में ढीले पड़ जाते हैं। उसका सबसे बडा कारण यदि गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में कहा जाय – ''जगत् प्रकास प्रकासक रामू' है। तात्पर्य यह कि एक ही ब्रह्म ज्योति से सभी ज्योतित हैं– ''एक जोति ते सब उत्पन्ना''। ईश्वर के सभी अंश हैं। उसी का लीलाविस्तार सृष्टि है। उसकी इच्छा का परिणाम संसार है। सबके उद्धार का आधार रामनाम है। सबमें राम का विस्तार है। राम में सबका अंश है। फिर शास्त्र और लोक का द्वन्द्व कहाँ? वर्ण, सवर्ण, विवर्ण का विवाद कहाँ? स्त्री–पुरुष का भेद कहाँ?

ज्ञातव्य है कि स्वामी रामानन्द के प्रधान शिष्य अनंतानंद के शिष्य नरहर्यानन्द थे। गोस्वामी तुलसीदास के गुरु यही नरहर्यानन्द थे। रामानन्दाचार्य का अवतरण (जन्म) प्रयाग तथा साधना काशी में सम्पन्न हुई। एक सौ ग्यारह वर्ष के सुदीर्घ कालखण्ड में रमने वाले महायोगी रामानन्द की साधना भूमि कोश में अनेक ऐसे ऐतिहासिक साक्ष्य विद्यमान हैं, जिनसे उनकी प्रामाणिकता और महत्ता का आकलन किया जा सकता।

श्रीमठ, पंचगंगाघाट सगुण–निर्गुण रामभक्ति धारा की आदिपीठ है। इसी आश्रम में स्वामी रामानन्द के गुरु राघवानन्द ने अपनी भक्तिसाधना द्वारा महती कीर्ति अर्जन की थी। वे रामानुजी परम्परा के आचार्य थे। उनकी प्रगतिशील चेतना का अवतरण स्वामी रामानन्द में पूर्णतः परिलक्षित होता है। पर समय की आवश्यकता और युग प्रवाह की चेतना को आत्मसात करते हुए स्वामी रामानन्द ने 14वीं शती में नये सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया जो रामानुजी सम्प्रदाय से सन्निकट होते हुए भी आराध्य की दृष्टि से भिन्न था। विष्णु और लक्ष्मी की पौराणिक छवि से हटकर लोकछविसम्पन्न शौर्य से परिपूर्ण श्रीरामसीता उनके आराध्य बनते हैं। ऐसे राम जो रावण जैसे दुर्दमनीय राजा का संहार करते हैं। ऋषियों, भक्तों और संतों के

त्राणदाता हैं। स्वयं धनुर्धर हैं। महाराज दशरथ और कौशल्या के पुत्र हैं। ऐसे राम भगवत्ता के स्वाभाविक गुणों से सम्पन्न हैं। अतः गत सात–साढे सात सौ वर्षों से भक्ति की मंदाकिनी आचार्य रामानन्द की अनुवर्ती रही है। उनकी भक्ति की यह मंदाकिनी अपने एक तट पर सगुण तो दूसरे पर निर्गुण का प्रवहन करती रही है। आचार्य रामानन्द की प्रभविष्णुता, उदारता और धर्म के तात्त्विक स्वरूप की अचूक पहचान ने उन्हें युग चेतना का नायक बना दिया। अतः उनके आगे–पीछे सनाम और अनाम तमाम सम्प्रदायों का नाम जुड़ता गया। एक ही नहीं अनेक रामानन्द का जन्म हुआ। उनका जीवन उनकी उदार प्रवृत्ति, उनके पुण्य श्लोक कार्य, उनकी अध्यात्म चेतना और सबसे बढ़कर उनकी युग चेतना ने उन्हें अमरता की श्रेणी में खड़ा कर दिया।

निष्कर्ष

स्वामी रामानन्द वैष्णव भक्ति प्रस्थान (आंदोलन) के ऐसे जननायक थे जो लोक और शास्त्र दोनों का समन्वय भलीभांति जानते थे। परिणामतः भारतीय समाज में वैष्णव भक्ति का सर्वाधिक प्रसार हुआ। उनके द्वादश शिष्यों में अल्पसंख्य जनभाषा हिन्दी के ही कवि थे, उनके सम्प्रदाय में अल्पसंख्य साधु कम पढ़े–लिखे थे। बहुत तो निरक्षर थे, पर जिसने भी रामनाम का महामंत्र ले लिया, भजन गाने लगा, ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाने लगा, वह वैरागी भक्त हो गया। इस प्रकार सम्पूर्ण देश में अल्पतम साधनों द्वारा उच्चतम भक्ति सम्प्रदाय खडा करने का दूरदर्शी चिंतन स्वामी जी का था। यही कारण है कि रामानन्दी साधुओं की असंख्य कुटिया और अगणित भक्त आज भी देश के प्रत्येक भूभाग में सहजता से मिल जाते हैं। यह स्वामी रामानन्द के माध्यम से वैष्णव भक्ति प्रस्थान का मेरुदण्ड और सनातन हिन्दू समाज का एक महनीय आधारभूत कार्य है।

अतः कहा जा सकता है कि समूचा भक्ति प्रस्थान (आन्दोलन) शास्त्रसम्बद्ध होते हुए भी लोकसम्बद्ध है। आचार्यों ने अपने उपास्य के शील, चरित्र और लीलात्मक कार्यव्यापारों को लोक की जनरंजनकारी भूमिका से जोड़ा है। राम–कृष्ण जैसे आराध्य सर्वत्र लोकमंगलमयी प्रवृत्तियों से जुड़े हैं। इसलिए वैष्णव भक्ति प्रस्थान में शतसहस्त्र प्रस्फुटित धाराएँ शास्त्र को संस्पर्श करती हुई लोक की मधुमती भूमिका में अपना पर्यवसान कर देती है। कृष्ण का बालचरित्र, रसियारूप और यौद्धा की भूमिका में इसी जनपक्ष का विस्तार लगता है। राम का वनगमन, आदिवासियों से मित्रवत् व्यवहार, जटायु का दाह–संस्कार, रावण का संहार, ऋषियों का त्राण आदि प्रसंग भक्ति की इसी लोकोन्मुखता के परिचायक हैं। लोकोन्मुखता के इस विस्तार में आचार्य रामानन्द की अप्रतिम भूमिका है।

अंत टिप्पणी

1. *शास्त्री कौसलेन्द्र दास–गुरू मिल्या रामानन्द –जगदगुरू रामानन्दाचार्य स्मारक सेवा न्यास, श्रीमठ वाराणसी–2010 (पृ.सं.76) (अन्य संदर्भ – पदमपुराण और भागवत्पुराण।)*
2. *आचार्य जयकान्त शर्मा– वैष्णव मताब्ज भास्कर – जगद्गुरू रामानन्दाचार्य स्मारक सेवा न्यास –श्रीमठ, काशी –पृष्ठ सं.–19 –तत्व चिन्तन प्रकरण –प्रथम प्रश्नोत्तर –कारिका– 4*
3. *वही/पृष्ठ सं. 185 मुक्ति साधन प्रकरण –चतुर्थ प्रश्नोत्तर –कारिका –135*
4. *वही/पृष्ठ सं. 9 –श्री सीतास्तवन–कारिका–2*
5. *वही/पृष्ठ सं.–23 – तत्त्व चिन्तन प्रकरण –प्रथम प्रश्नोत्तर –कारिका –7*
6. *वही/पृष्ठं सं. 35,– जप्य निर्धारण प्रकरण द्वितीय प्रश्नोत्तर कारिका–10*
7. *वही/पृष्ठं सं. 63,– जप्य निर्धारण प्रकरण द्वितीय प्रश्नोत्तर कारिका–34*
8. *वही/ पृष्ठ सं. –114–मुक्ति साधन प्रकरण –चतुर्थ प्रश्नोत्तर –कारिका–74*
9. *डॉ. शिव सागर त्रिपाठी – वेदान्त सार– जगदीश संस्कृत पुस्तकालय–2010, पृ.सं.–185*
10. *बृहदारण्य कोपनिषद– अध्याय –4– ब्राह्मण –5 सूत्र–6*
11. *भागवद्पुराण–एकादश स्कन्ध– एकादश अध्याय– श्लोक–2*
12. *सम्पादन– ओम प्रकाश सिंह– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल –हिन्दी साहित्य का इतिहास– प्रकरण–2*
13. *आचार्य जयकान्त शर्मा– वैष्णव मताब्ज भास्कर – जगद्गुरू रामानन्दाचार्य स्मारक सेवा न्यास –श्रीमठ, काशी –पृष्ठ सं.–152 –मुक्ति साधन प्रकरण –प्रथम प्रश्नोत्तर –कारिका– 110*

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

आचार्य आनन्द भाष्य सिंहासनासीन जी–जयन्ती स्मृति ग्रन्थ– श्री आनन्द भाष्य मुद्रणालय अहमदाबाद – 2006

कमलाकान्त त्रिपाठी–वैष्णव मताब्ज भास्कर– चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान– दिल्ली

कृष्णानंद उपाध्याय– वैष्णव मताब्ज भास्कर– चौखम्भा प्रतिष्ठान दिल्ली

डॉ. देवी सहाय पाण्डेय 'दीप'–पातञ्जल योग दर्शन –चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली –2013

डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी–श्री रामानन्द चरितम्–जगद्गुरू रामानन्दाचार्य स्मारक सेवा न्यास श्रीमठ वाराणसी–2011

डॉ. प्रीतिप्रभा गोयल–भारतीय संस्कृति–राजस्थानी ग्रन्थागार जोधपुर–2008

डा. उदय प्रताप सिंह–श्रीसम्प्रदाय (रामावतः) विविध आयाम श्रीमठ समग्र–जगद्गुरू रामानन्दाचार्य स्मारक सेवा न्यास वाराणसी–2010

पण्डित मोती लाल जोशी–रामानन्द सौरभ–राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन–2010

बलदेव उपाध्याय– संस्कृत का इतिहास –शारदा मंदिर बनारस –1985

श्रीमठ स्मारिका –पंचगंगा घाट–वाराणसी –2013

हरिकृष्ण गोस्वामी– श्री आचार्य विजय– जानकी घाट, प्रकाशन– अयोध्या–1922

रामानन्द दर्शन दीपक– जगद्गुरू रामानदाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वद्यिालय, जयपुर–2013